E-ISSN: 3048-6041 | Volume- 2, Issue- 8 | August 2025

समकालीन हिंदी उपन्यासों में किसान विमर्श : सामाजिक परिवर्तन और भूमंडलीकरण के परिप्रेक्ष्य में

मनोज कुमार शर्मा
शोधार्थी, हिंदी विभाग, मानविकी संकाय, गुजरात विश्वविद्यालय, अहमदाबाद

शोध सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र में भारतीय किसान और ग्रामीण जीवन पर भूमण्डलीकरण के प्रभावों का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है। भूमण्डलीकरण ने ग्रामीण समाज की पारंपरिक संरचना और सांस्कृतिक पहचान पर गहरा असर डाला है जिसे विभिन्न उपन्यासकारों ने यथार्थ स्वरूप में चित्रित किया है। ग्रामीण जीवन पर आधारित उपन्यासों में भारतीय किसानों की दयनीय स्थिति, गरीबी, ऋणग्रस्तता और अन्य समस्याओं का सजीव चित्रण किया गया है। इन उपन्यासों में किसान जीवन के संघर्ष, अकाल, कृषि उत्पादन की अनिश्चितता और बदलती व्यवस्था के प्रभाव को उजागर किया गया है जिससे किसानों को निरंतर संकटों का सामना करना पड़ रहा है। इन उपन्यासों में किसान जीवन की चुनौतियाँ, उनकी सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान और भूमण्डलीकरण के कारण बदलते ग्रामीण परिवेश को गहनता से चित्रित किया गया है।

बीज शब्द : भूमण्डलीकरण, भारतीय किसान, ग्रामीण जीवन, कृषि संकट, सांस्कृतिक संकट, साहित्यिक अभिव्यक्ति

भूमंडलीकरण ने भारतीय समाज, संस्कृति और अर्थव्यवस्था को गहराई से प्रभावित किया है जिसमें शहरी जीवन के साथ-साथ ग्रामीण भारत और किसानों के जीवन में भी व्यापक बदलाव दृष्टिगत हुए हैं। भूमंडलीकरण के साथ ही आर्थिक नीतियों, बाजारवादी व्यवस्थाओं और मल्टीनेशनल कंपनियों की बढ़ती भूमिकाओं ने किसानों की पारंपरिक जीवनशैली, उनकी खेती-किसानी के तौर-तरीकों और उनके सामाजिक-आर्थिक ताने-बाने को प्रभावित किया है। किसानों की जमीनों का अधिग्रहण, उचित मूल्य न मिलना, कर्ज का बढ़ता दबाव और आत्महत्या जैसे मुद्दे भारतीय ग्रामीण जीवन की जटिल वास्तविकताओं को उजागर करते हैं। हिंदी साहित्य में विभिन्न विधाओं में इन बदलावों को बारीकी से चित्रित किया गया है। प्रेमचंद जैसे यथार्थवादी लेखकों से लेकर समकालीन साहित्यकारों तक हिंदी उपन्यासों में किसान जीवन की बदलती तस्वीर को प्रस्तुत करने का प्रयास हुआ है। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने *संपत्ति शास्त्र* (1908) में किसानों और फसल की बर्बादी के दृश्य को प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि "हिंदुस्तान की जमीन की मालिक रियाया नहीं अंग्रेजी गवर्नमेंट है वह रियाया से लगान वसूलती हैं।"

किसानों के शोषण और उनके संघर्ष की गाथाएं जितनी पुरानी हैं उतनी ही पुरानी उनके खिलाफ आक्रोश और प्रतिरोध की कहानियां भी हैं। हिंदी उपन्यासों में इन संघर्षों को सलीके से दर्ज किया गया है। आजादी से पहले के उपन्यासों में किसानों की समस्याएं औपनिवेशिक शोषण की शिकार थीं जहां जमींदारों के अत्याचार, लगान, इजाफा, बेदखली और बेगारी जैसे मुद्दे प्रमुख थे। प्रेमचंद के *प्रेमाश्रम*, *कर्मभूमि*, *रंगभूमि* और *गोदान* जैसे उपन्यासों ने इस पीड़ा को प्रभावी ढंग से चित्रित किया। आजादी के बाद जमींदारी प्रथा के अंत के बावजूद किसानों पर शोषण के नये रूप देखने को मिले जिसे नागार्जुन के *बलचनमा* और *बाबा बटेसरनाथ* जैसे उपन्यासों में उकेरा गया। हरित क्रांति और नई पंचायती व्यवस्था के साथ किसान जीवन में सत्ता और वर्ग संघर्ष के नए आयाम जुड़े जो मिथलेश्वर के *यह अंत नहीं* में दर्शाए गये है।

भूमण्डलीकरण के युग में वैश्विक स्तर पर परस्पर संपर्क और आदान-प्रदान में वृद्धि हुई है हालांकि इसका प्रभाव समाज के हर वर्ग पर समान नहीं रहा। ग्रामीण भारत और विशेषकर किसान वर्ग के लिए भूमण्डलीकरण एक ऐसा बदलाव लेकर आया जिसने उनकी पारंपरिक जीवनशैली और आजीविका को गहराई से प्रभावित किया है। नई सदी के उपन्यासों में ग्रामीण जीवन के यथार्थ के साथ ही भूमण्डलीकरण के प्रभावों के कारण ग्रामीण समाज में आये सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक बदलावों को सजीव रूप में चित्रित किया है। ग्रामीण भारत की पारंपरिक संरचना, जो स्वावलंबन और सामूहिकता पर आधारित थी भूमण्डलीकरण के कारण धीरे-धीरे टूटती जा रही है।

भूमंडलीकरण और नई आर्थिक नीतियों ने किसानों के लिए हालात और बदतर बना दिये है। भूमि अधिग्रहण, बाजारवाद, कर्ज का बढ़ता बोझ और आत्महत्याओं ने उपन्यासकारों का ध्यान किसानों की ओर खींचा। रणेन्द्र का *गायब होता देश* आदिवासी किसानों के संघर्ष का करुण आख्यान है जो विकास के नाम पर विस्थापित किये जा रहे हैं। पंकज सुबीर का *अकाल में उत्सव* सरकारी योजनाओं और प्रशासन की असंवेदनशीलता को उजागर करता है जहां किसान जीवन की त्रासदियां प्रशासन के लिए उत्सव बन जाती हैं। संजीव का *फांस* किसान आत्महत्याओं की महामारी की तह तक जाकर बाजारवाद और सरकार की उदासीनता की परतें खोलता है। इन उपन्यासों में किसानों की त्रासदी और उनकी संघर्ष चेतना को साहित्यिक संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया गया है।

समय के साथ किसानों की समस्याएं बदल गई हैं और यह बदलाव उपन्यासों की कथावस्तु में भी परिलक्षित होता है। पहले जमींदारी उन्मूलन, चकबंदी, बेदखली और गरीबी जैसे मुद्दे प्रमुख थे लेकिन अब भूमि अधिग्रहण, किसान विस्थापन, खेतिहर जमीन का मल्टीप्लेक्स और शहरों में बदलना और जल-जंगल के विनाश जैसी समस्याएं साहित्य का केंद्र बन गई हैं। उपन्यासकार इन नई समस्याओं को गहराई से उजागर कर रहे हैं जहां खेती के विकास के बजाय शहरों के विस्तार को प्राथमिकता दी जा रही है और पुनर्वास जैसे मुद्दे किसान जीवन को और जटिल बना रहे हैं। यह बदलाव न केवल किसानों के संघर्ष को नए आयाम देता है बल्कि समाज और शासन की प्राथमिकताओं पर भी सवाल खड़े करता है।

कुमेदु शिशिर का *बहुत लंबी राह* (2003) खेतिहर मजदूरों के संघर्ष और उनकी समस्याओं का जीवंत चित्रण प्रस्तुत करता है। जमींदारी प्रथा के अंत के बाद भी पूंजीपतियों द्वारा किसानों के शोषण ने उनकी दशा को और बदतर बना दिया जिससे यह शोषण आत्महत्या जैसी त्रासद स्थितियों तक पहुंच गया। हिंदी में किसान आत्महत्या पर लिखा गया पहला उपन्यास *हलफनामे* किसान आत्महत्या के साथ ही जल संकट के कारण किसानों की परेशानियों को उजागर करता है। इसमें आंध्र प्रदेश के किसानों को जल संकट से जूझते हुए दिखाया गया है जो उनकी निरंतर बढ़ती समस्याओं और असहनीय जीवन संघर्ष का मार्मिक चित्रण करता है।

सुनील चतुर्वेदी के उपन्यास *काली चाट* (2015) में सरकार और बिचौलियों की साजिशों के कारण किसानों को कर्ज लेने और आत्महत्या करने पर मजबूर होते दिखाया गया है। इसी तरह संजीव का *फांस* विदर्भ के किसानों के संघर्ष और उनकी आत्महत्याओं को केंद्र में रखता है। इस उपन्यास में महाराष्ट्र के यवतमाल जिले के बनगाँव के किसानों की त्रासदी के साथ आंध्र प्रदेश और कर्नाटक के किसानों की भी दयनीय स्थिति को दर्शाया गया है। जीएम बीजों के लालच में किसान कर्ज के चक्रव्यूह में फंसते हैं और सूखा, खाद, पानी, बिजली और फसलों के उचित दाम न मिलने जैसी समस्याओं से जूझते हैं। उपन्यासकार ने गाँव की दयनीय स्थिति को गहराई से प्रस्तुत किया है। बनगाँव का वर्णन करते हुए संजीव दिखाते है कि यह गाँव सुखाड़ से जूझता हुआ "आधा-आधा" स्थिति आधा सूखा, आधा वन और आधी-अधूरी सुविधाओं के साथ अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहा है। उपन्यास इन गंभीर समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए किसानों की दुर्दशा और व्यवस्था की विफलता को प्रभावी ढंग से उजागर करता है।

शिवमूर्ति का *आखिरी छलांग* उपन्यास उनके निजी अनुभवों से प्रेरित होकर किसान जीवन की वास्तविक चिंताओं और संघर्षों को उजागर करता है। उपन्यास में दो प्रमुख समस्याओं—बेटे को इंजीनियर बनाने का खर्च और बेटी की शादी में दहेज का प्रबंध को केंद्र में रखा गया है। मुख्य पात्र पहलवान अपनी साहसिक छलांग के माध्यम से यह दर्शाता है कि औसत किसान की जिंदगी की तुलना में मामूली चपरासी की नौकरी भी बेहतर हो सकती है। वह सोचता है, "काश किसी ने समय रहते चेताया होता कि खेतीबाड़ी छोड़कर पढ़ाई-लिखाई का सहारा लें, तो इस खानदानी दलदल में क्यों फंसते?" यह उपन्यास किसानों के आर्थिक संकट और पीढ़ियों से चली आ रही पारिवारिक जिम्मेदारियों की दुविधा को बड़ी गहराई से व्यक्त करता है जो उन्हें अपने पारंपरिक जीवन से बाहर निकलने के लिए प्रेरित करता है।

वीरेंद्र जैन का *डूब* उपन्यास विकास की उस त्रासदी को उजागर करता है जिसमें बेतवा नदी पर बांध बनाने की योजना के कारण किसानों को विस्थापन और संकट का सामना करना पड़ता है। इसी प्रकार *पाहीघर* और *बेदखल* उपन्यासों में किसानों की समस्याओं का चित्रण किया गया है जहां लगान, कानून, छोटी जोत और जमींदारों के अत्याचार से उनकी विवशता सामने आती है। इन उपन्यासों में किसानों के संघर्ष और उनके सामूहिक प्रतिवाद की गाथा को सजीव रूप में प्रस्तुत किया गया है जो उनके जीवन की त्रासदी और सामाजिक शोषण की गहराई को दर्शाती है।

पंकज सुबीर के उपन्यास *अकाल में उत्सव* में एक तरफ सरकारी कर्मचारियों के उत्सव को दर्शाया गया है तो दूसरी तरफ सूखापानी नामक गाँव के किसान आत्महत्या कर रहे हैं। कथा का केंद्र छोटे किसान रामप्रसाद है जो दो एकड़ जमीन पर दिन-रात मेहनत करता है लेकिन उसकी मेहनत का फल महाजन खलिहान से ही उठा ले जाता है। रामप्रसाद बैंक कर्ज के फर्जीवाड़े का शिकार बनता है और प्रकृति भी उसकी फसल को नष्ट कर देती है। किसानों की फसल नष्ट होने पर मुआवजा न मिलने की समस्या को सुबीर जी ने अपने उपन्यास में बड़े ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है “लेकिन सर किसान तो सरकार के ही भरोसे है न? अगर सरकार उसको मदद नहीं करेगी ती कौन करेगा? खेतों में खड़ी फसल अगर बरबाद हो गई, तो किसान क्या करे, क्या मर जाए? आगे सरकारी अफसरों के माध्यम से किसानों के प्रति सरकार का घिनौना चेहरा भी इस उपन्यास में प्रस्तुत होता दिखाई पड़ता है- तो मर जाए? सरकार के भरोसे बैठा है क्या? दुनिया में सब अपने-अपने भरोसे बैठे हैं। आपको किसने कहा है खेती करो? मत करो खेती कोई दूसरा काम करो।”

पंकज सुबीर ने फसल नष्ट होने और सरकार की उदासीनता से जूझते किसानों की हालत को मार्मिकता से उकेरा है। उपन्यास किसानों की उस बेबसी को सामने लाता है जहां उनका आखिरी सहारा सरकार होती है लेकिन जब वही सहारा नहीं मिलता तो वे निराश होकर अपनी जान गंवा देते हैं। यह उपन्यास समृद्ध और सुविधा संपन्न समाज की चमक-दमक के बीच पशुओं से भी बदतर जीवन जीने को मजबूर किसानों और मजदूरों की दयनीय स्थिति को प्रखरता से उजागर करता है। किसानों के संघर्ष की गाथा को उनकी रोजमर्रा की समस्याओं जैसे- गरीबी, कर्ज, फसल की बर्बादी, और शोषण के विभिन्न पहलुओं के माध्यम से रेखांकित करते हुए यह उपन्यास किसानों की त्रासदी और सरकारी तंत्र की असंवेदनशीलता का सजीव चित्रण करता है।

नई पूंजीवादी अर्थव्यवस्था और बहुराष्ट्रीय कंपनियों के बढ़ते दबाव के कारण भूमि अधिग्रहण और विस्थापन की समस्याएं सामने आईं जिससे किसानों का संघर्ष और अधिक व्यापक और जटिल हो गया। इस लड़ाई में महिलाएं भी कंधे से कंधा मिलाकर खड़ी हैं। *वरुण के बेटे* की मधुरी, *अग्नि बीज* की श्यामा और *यह अंत नहीं* की चुनिया जैसी पात्रों ने संघर्ष के मोर्चे पर साहसिक भागीदारी दिखाई है। संजीव के *धार* में मैना का यह दृढ़ संकल्प कि “इस जहर की फैक्टरी को अपने इलाके में और नहीं चलने देंगे।” इस संघर्ष की व्यापकता और दृढ़ता को रेखांकित करता है।

इस प्रकार समकालीन उपन्यासकारों ने किसान जीवन के यथार्थ और आत्महत्या जैसी त्रासदियों को गहराई से चित्रित किया है। किसान के लिए उनकी खेती मात्र एक व्यवस्था नहीं, बल्कि उनकी जीवनशैली और संस्कृति का अभिन्न हिस्सा है। किसान और मिट्टी का अटूट संबंध उनकी परंपरा और अस्तित्व को परिभाषित करता है लेकिन वर्तमान परिस्थितियों में यह संबंध धीरे-धीरे टूटता हुआ दिखाई दे रहा है। भूमण्डलीकरण के कारण बढ़ती समस्याओं, कर्ज, प्राकृतिक आपदाओं और फसलों के उचित दाम न मिलने के कारण किसान अब खेती छोड़ने पर मजबूर हो रहे हैं। यह प्रवृत्ति न केवल ग्रामीण संस्कृति और परंपरा को कमजोर कर रही है बल्कि भारतीय कृषि और आत्मनिर्भरता के लिए भी गंभीर चिंता का विषय बन गई है। उपन्यासकारों ने इस बदलते यथार्थ को संवेदनशीलता और गहराई से प्रस्तुत किया है।

निष्कर्ष-

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि किसान की बदहाली सीधे तौर पर देश की बदहाली का प्रतीक है लेकिन सरकारें इस सच्चाई को नजरअंदाज कर नवउदारवादी नीतियों के तहत उद्योगपतियों और पूंजीपतियों को लाभ पहुंचाने में लगी हैं जिससे किसानों की स्थिति और अधिक दयनीय हो गई है। सूखा, बाढ़ और ओला जैसी प्राकृतिक आपदाएं किसान के लिए स्थायी शत्रु हैं लेकिन जब सरकारी नीतियां इनकी सहायता के बजाय उनके लिए बोझ बन जाएं तो यह स्थिति और भी विडंबनापूर्ण हो जाती है। किसानों की आत्महत्याएं और इनसे जुड़े आंकड़े भी एक सामान्य घटना की तरह देखे जाने लगे हैं जो यह दर्शाता है कि सरकारें और समाज किसान के प्रति किस हद तक संवेदनहीन हो गए हैं। अत: किसान की समस्याओं का समाधान करना उनकी स्थिति सुधारने के साथ ही देश की आर्थिक और सामाजिक स्थिरता बनाये रखने के लिए भी आवश्यक है।

संदर्भ सूची-

1. पंकज सुबीर : *अकाल में उत्सव*, शिवना प्रकाशन, 2016
2. मैनेजर पांडेय : *सम्पति शास्त्र,* (प्रस्तावना से) पृ. सं 14 केन्द्रीय हिंदी निदेशालय, दिल्ली
3. राजु शर्मा : *हलफनामें*, राधाकृष्ण पेपरबैक्स, संस्करण 2007
4. वीरेंद्र यादव : *प्रगतिशीलता के पक्ष में*, साहित्य भंडार प्रकाशन, 2014
5. शिवमूर्ति : *आखिरी छलांग*, राजकमल प्रकाशन, 2008
6. संजीव : *फाँस*, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2015